कबीर वाणी के सामाजिक निहितार्थ

✧ **कमलेश सिंह नेगी**

संत कबीरदास भारतवर्ष के प्रथम साहित्यकार हैं जिन्होंने भारत को न केवल करीब से देखा था, वरन् भोगा भी। मिथ्या आडम्बरों के प्रति जैसी अनास्था इन्होंने व्यक्त की वैसी न तो पहले कोई कवि कर सका और नहीं परवर्ती युग में भी किसी का वैसा साहस हो सका। संत कबीर के पास धर्म, दर्शन और चरित्र निर्माण के लिए अपना संदेश है। धर्म का सम्बन्ध उन्होंने कर्त्तव्य से जोड़ा। धर्म को सम्प्रदाय से अलग किया। यही कारण है कि वे धर्म के क्षेत्र में संकीर्णता के घोर विरोधी हैं। इसके साथ ही दर्शन के क्षेत्र में अद्वैत दृष्टि से एकेश्वरवाद का समर्थन किया है। इसके साथ ही अद्वैतवाद, वैष्णवों की भक्ति भावना सिद्धों नाथों की सहज सरल साधना को भी समर्थन किया।1

संत कबीर का आविर्भाव ऐसे समय हुआ जब देश की राजनीतिक धार्मिक और सामाजिक परिस्थितियों में उथल–पुथल थी। उनका समय 15वीं शताब्दी के प्रारम्भ से 16वी शताब्दी के मध्य तक माना जाता है। वे भक्तिकाल के अन्य संत कवियों के समान कबीर के जीवन–वृन्त सम्बन्धी प्रामणिक बातें उपलब्ध नहीं होती। इनके बारे में कबीरग्रन्थावली, गुरूग्रन्थ साहब, बीजक आदि से सामग्री मिलती है। उससे उनके जीवन के सन्दर्भ में अत्यल्प जानकारी मिलती है। कबीर के शिष्य धर्मदास ने इनका जन्म 1455 ज्येष्ठ पूर्णिमा को माना है।

^pkng lk ipiu lky x;] pUnokj bd Bkj B,A tB lnh cjlkbr dk] iijuekl h çxV Hk,AA2

कबीर के जन्म के सम्बन्ध में मृत्यु पर भी मत भिन्नता है। मृत्यु के सम्बन्ध में निम्न दोहा प्रचलित है –

^lor iUng lk iNgRrj] fd;k exgj dk xkuA ek?k lnh ,dknlh] jyk iku e ikuAA*3

कबीर की मृत्यु 1575 में हुई। इस प्रकार 120 वर्ष की उम्र तक वे जीवित रहे। इनके गुरू का नाम रामानन्द था। पिता नीरू, माता नीमा पत्नि लोई तथा पुत्र का नाम कमाल तथा पुत्री का नाम कमाली है।

कबीरदास ने अपनी वैचारिक चेतना को चारों ओर विखेरते हुए पूरी एक शताब्दी तक भारतीय जनमानस का नेतृत्व किया। एक ओर जहां उनके तर्क संगत विचारों का युग के जीवन पर गम्भीर प्रभाव पड़ा वहीं दूसरी ओर उनकी गहरी रहस्य भावना ने भी साधकों को मग्न किया। यही कारण है कि उनके न चाहते हुए भी उनके अनुयाइयों का एक बहुत बड़ा वर्ग एक पंथ के रूप में परिवर्तित हुआ। जिसे आज 'कबीर पंथ' के नाम से जाना जाता है।4

कबीर के व्यक्तित्व की तेजस्विता से प्रभावित होकर निम्नवर्ग से उच्च वर्ग तक के लोग उनके शिष्य बन गये। उनके मानवता से युक्त धर्म को स्वीकार किया। कबीर का यह धर्म संकीर्णता से मुक्त और उदार मानव चेतना से आलोकित एवं आध्यात्मिक आत्मा के रस से सिंचित है।5

संत कबीर ने समाज के बारे में जो विचार प्रकट किये वे परिस्थितिजन्य थे। जिस समाज और धर्म से उनका संपर्क रहा वे दोनों ही विकृत थे। धर्म में संकीर्णता व्याप्त थी तो समाज में वर्णव्यवस्था। ऐसा धर्म और समाज राष्ट्र के लिए अहितकार होता है। इसलिए कबीर ने अपनी भेदक दृष्टि से इन दोनों पर अपने विचार प्रकट किये है। इस समय भारत वर्ष में मुख्यतः दो ही धर्म थे हिन्दू और मुसलमान। मुसलमानों का शासन उस समय उत्तर भारत में स्थापित हो चुका था। हिन्दू धर्म संकीर्णता का शिकार हो गया था। जिसने इस्लाम धर्म के साथ समन्वय स्थापित नहीं किया। परिणामतः दोनों लगी। इसके अलावा दोनों ही धर्म उस समय आडम्बर प्रधान थे साथ ही धर्म की उदार भूमि लुप्त थी। कबीर ने देखा कि पड़ौस मे रहने वाला हिन्दू और मुसलमान परस्पर वैमनस्य की अग्नि में जल रहे है।6 कबीर की दृष्टि में ईश्वर या खुदा का निवास तो सभी जगह है। मुस्लिमों के धार्मिक आडम्बरों पर अपने विचार प्रकट करते हुए लिखा है कि –

^dkdj ikFkj tkfj d] efLtn yb puk;A rk pf< eYyk ckx n] D;k cgjk gvk [knk;AA**

इसी तरह हिन्दू धर्म के अन्तर्गत भी कई रूढ़ियों एवं आडम्बरों का भी खण्डन किया है। मूर्तिपूजा, तीरथ, तिलक, माला आदि पर कटाक्ष करते हुए लिखा है कि –

^dchj ekyk dkB dh] dfg le>ko rk fgA eu u fQjko vkiuk dgk fQjko ekfgAA*7

कबीर की साधना पद्धति में रामानन्द के विशिष्टाद्वैत तथा उनकी वेदान्तिक व्याख्या, सिद्धों और नाथों की साधना, सूफियों की प्रेम भावना का समावेश देखने को मिलता है। कबीर ने निर्गुण ब्रह्म की उपासना का संदेश दिया है। इसके लिए उन्होंने हठयोग की साधना पद्धति का सहारा लिया है। हठयोग में कुण्डलिनी को जाग्रत करने की क्रिया पर जोर दिया जाता है। मनुष्य अपने अन्दर की शक्ति को न समझकर इधर–उधर भटकता रहता है। ऐसे लोगों को उनका स्पष्ट संदेश है –

---

vfrfFk ik/;kid&fgUnh] thokth fo'ofo|ky;] Xokfy;j ¼e-Á-½

^dLrjh d.My cl] ex << ou ekfgA ,l ?kV&?kV jke g] nfu;k n[k ukfgAA*

कबीरदास सहज भक्ति के प्रतिपादक रहे हैं। वे हठयोगी क्रियाओं को भी रूढ़िवद्ध नहीं होने देना चाहते थे। प्रत्येक साधना को सहज अनुभव से प्राप्त करना चाहते थे।8 कबीर के सहज की व्याख्या, साम्प्रदायिक न होकर, स्वाभाविक है। उन्होंने ठीक ही कहा है –

^lgt lgt lc dkb dg] lgt u tku dk;A tk lgt lkfgc fey] lgt dgh t lk;AA*

सांसारिक मनुष्यों को सबसे बड़ा भय मृत्यु का रहता है। वो किसी भी तरह मृत्यु से बचना चाहते हैं। कबीर इसे परमात्मा का मिलन कहते हैं। ऐसा अखण्ड आनन्द जहाँ पहुंचकर मानव हृदय विश्रांन्ति पता है। मृत्यु को उन्होंने मिलन कहा है। कबीर के मिलन की भावना स्त्री पुरूष के ब्याह या गौने के समय के आनन्द की भावना के समान है। आत्मा स्त्री है। परमात्मा पति है। मरणोपरान्त उससे भेंट होती है। अतः कबीर उससे मिलने को उत्सुक है –

^tk eju l tx Mj] ekj eu vkuUnA dc efjgk dc ikbgk iju ijekuUnAA9**

कबीर की स्पष्ट मान्यता है कि जिस किसी को भी सत्य का एक बार बोध हो जाता है वह किसी मिथ्या या भ्रामक बात का समर्थन नहीं करता है। कबीर की वाणी में जो प्रकाश पुंज है, वह बौद्धिक आलोचना का विषय नहीं है।10 वह संग्रहालय की वस्तु नहीं है बल्कि जीवित प्राणवान वस्तु है उनकी वाणी का प्रकाश जो इतने क्षेत्रों को उद्भासित कर सका है यह उनके महत्व का स्वयं प्रतिपादन है। संत कबीर एक सच्चे धर्म गुरू थे। यही कारण है कि उनकी रचनाओं में सच्चा आध्यात्मिक रस झलकता है। यथा –

^ykyh ej yky dh ftr n[kk frr ykyA ykyh n[ku e xb] e Hkh gk xb ykyAA*

सच तो यह है कि पाठक कबीर पर पर श्रद्धा करने की अपेक्षा प्रेम अधिक करते हैं। इसलिये उनके संत रूप के साथ ही उनका कवि रूप बराबर चलता रहता है। वे केवल नेता और गुरु ही नहीं हैं, साथी और मित्र भी हैं।11 कबीर पाठक को प्रेम का संदेश देते हैं। सच्चाई का रास्ता सुझाते हैं। ऐसा प्रेम जो सभी को स्वीकार हो।

^ftfg ?kfV çhfr u çe jl] Qfu jluk ugh jkeA r uj bl lkj e] mift Hk; cdkeAA12**

प्रिय के वियोग में तड़पती हुई आत्मा के जो कारूणिक चित्र कबीर ने खींचे हैं, वे अनुपम, अभूतपूर्ण और हिन्दी साहित्य में अद्वितीय हैं। कबीर जैसा दैन्य, उन जैसा आत्म–समर्पण, हृदय की गहरी तड़पन अन्यत्र दुर्लभ है। कबीर ने परमपुरूष से अपने आध्यात्मिक मिलन का वर्णन विवाह के रूपक द्वारा किया है। इसका आशय यह नहीं है कि कबीर बहुदेववाद या अन्धविश्वास से अन्य देवी देवताओं को मानते थे।

^dg dchj ge C;kfg pyj i:"k ,d vfoukl hA*

कबीर ने अपनी बात साखी, सबद एवं रमैनी के माध्यम से कहीं है। साखी हिन्दी के संत कवियों का सर्वाधिक प्रिय छन्द रहा है। वैसे देखा जाये तो इस छंद का प्रयोग अपभ्रंश भाषा के कवियों ने भी किया है। नीति काव्य की रचना में यही छन्द सर्वाधिक लोकप्रिय रहा है। सिद्ध कवियों ने भी इसका खूब प्रयोग किया है। कबीर ने साखी की प्राचीनता का उल्लेख करते हुए लिखा है पद गाये मन हरषिया साखी कहा आनन्द। डॉ0 रामकुमार वर्मा ने साखी को साक्षी का विकृत रूप माना है। इसके अलावा उन्होंने प्रश्न किया है कि साक्षी किसकी है, किसके सामने है इसका क्या रूप है? इसका उत्तर हमें 'कबीर बीजक' की अन्तिम साखी में मिलता है –

^lk[kh vk[kh Kku dh] lef> n[k nu ekfgA fcu lk[kh lkj dk] >xjk NVr ukfgAA*

अर्थात् जब हम अज्ञान के अन्धकार में भटकते हुए ज्ञान के प्रकाश की अपेक्षा करते हैं तब साखी द्वारा ही हमें वह ज्ञान प्राप्त होता है। साखी के समान 'सबद' भी अपने में विस्तृत अर्थ को समाहित किये हुए है। दरअसल कबीरदास ने प्रेम के असीम आनन्द को प्रकट करने के लिए 'सबद' का प्रयोग किया है। यह शबद भी बहुत पुराना और नाना मतों में कई रूप ग्रहण कर चुका है। निर्गुणिया संतो के अनुसार यह सारा विश्व 'सबद' में बंधा है। सबद के इस अनादि संगीत की तान को सुरति ताल और लय को 'निरति' कहते हैं।

कबीर की कविता भाषा के बारे में विवादित रही है। हिन्दी के कई आलोचक यह मानते हैं कि कबीर को भाषा का पर्याप्त ज्ञान नहीं था। साथ ही मसि कागद छुआ नहीं कलम गहि नहिं हाथ।' का हवाला देते है। यहां मैं स्पष्ट करना चाहता है। कि संत कबीर का भाषा पर पूर्ण अधिकार था। वे जनकवि थे। जनता की बात को अभिव्यक्त करने के लिए जनता की वाणी में ही उन्होंने अपनी बात कही। वे जिस स्थान, प्रान्त में जाते वहां की बोली में ही अपनी बात को कहते हैं। यही कारण है कि कबीर की वाणी में राजस्थानी, भोजपुरी, हरियाणवी, बुन्देली, मालवी, खड़ी बोली आदि समस्त भाषाओं की शब्दावली देखने को मिल जाती है। भाषा कबीर की वाणी में लाचार नजर आती है क्योंकि जिस बात को जिस रूप में प्रकट करना चाहा है उसे उसी भाषा में कहा है।

कबीर का संघर्ष किसी विशेष सम्प्रदाय, समुदाय या व्यक्ति के विरूद्ध नहीं था। उनका उद्देश्य तो तत्कालीन व्यवस्था में परिवर्तन लाना था। समाज का एक ऐसा वर्ग जो सदियों से उपेक्षित, शोषित रहा है। उनकी पैरवी करना, उनमें आत्मचेतना की लहर पैदा करना ही कबीर वाणी है। ऐसी वाणी जिसे सभी धर्मावलम्बी

सहज रूप से अपना सकते हैं। हिन्दू–मुस्लिम दोनों ही धर्माबलम्बियों को दो टूक शब्दों में संदेश देते हैं। साथ ही कहते हैं– अरे इन दो उन राहन पाई।'13 कबीर ने इन्हीं की परम्परा को आगे बढ़ाया सहजयान, नाथंपथ आदि के विचारों से कबीर को ऊर्जा मिली। तत्पश्चात् समाज के कोने – कोने तक इस प्रकाश पुंज को फैलाया। कबीर की गणना हम भक्तिकाल में करते है। भक्ति के उद्भव और विकास के सम्बन्ध में विद्वानों में मत–भिन्नता है। फिर भी अधिकांश विद्वानों का ऐसा मत है कि भक्ति का प्रारम्भ दक्षिण भारत में हुआ। दक्षिण भारत में आलवर और नयनार संतों का इसमें प्रमुख योगदान है। रामानन्द एक ऐसे कवि हुए जिन्होंने भक्ति आन्दोलन को दक्षिण से उत्तर तक पहुँचाया। तत्पश्चात् कबीर ने इसे पल्लवित किया।

HkfDr nf{k.k Åi th] yk;s jkekuUnA çdV fd;k dchj us lIrnhi uo[k.MAA14

कबीर सामाजिक व्यवस्था में सुधार की बात कहते समय पहले व्यवस्था पर चोट करते है। इसके लिए उन्होंने उलटवासियों का सहारा लिया है। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपनी पुस्तक हिन्दी साहित्य की भूमिका में लिखा है–

^dchjnkl dh mYVh ckuhA cjls dcy Hkhts ikuhAA

कबीर निर्गुण ब्रहा के उपासक हैं। उलटवांसियों के द्वारा उन्होंने कई विलक्षण बातें कही हैं। जो पाठक को हैरत में डालने बाली है, जैसे–

^,d vpHkk n[kk js Hkkb] BkM+k flg pjko xkbA igys iwr ihNs Hkbl ekb] pyk dk x: ykx ikbAA15**

कबीर माया को ब्रह्म की रहस्यमयी शक्ति स्वीकार करते हैं। जो आशक्तियों के रूप में प्रकट होकर मनुष्य पर अपना प्रभाव डालती है। उसे अपने लक्ष्य से विमुख कर देती है –

^dchj ek;k ikfi.kh gfj lw djs gjkeA e[k dfM+;kyh dqefr dh] dgu u nbZ jkeAA

संत कबीर अपने समय के उच्च कोटि के साधक थे, सत्य के उपासक थे। एक उच्च कोटि के कवि होने के साथ–साथ समाज सुधारक थे। सत्यान्वेषण हेतु उन्होंने जो कुछ कहा वही उनकी कविता बन गई है। कबीर की वाणी जनमानस की गर्मव्यवस्था का प्रतिनिधित्व करती है। उनकी काव्यधारा का अजस्र प्रवाह युग–युगान्त तक बना रहेगा।16 कबीर की वाणी में बुद्धि तत्व की प्रधानता है। यही कारण है कि उन्होंने जो कुछ कहा है वह उनके चिंतन पक्ष का उद्घाटन करता है कबीर ने अपनी गम्भीर भेदक दृष्टि से सामाजिक अधोगति को सुधारने का प्रयत्न किया। एक सच्चे कवि के रूप में उन्होंने प्रत्येक मत और सम्प्रदाय की अच्छाइयों की प्रशंसा की तथा कुरीतियों, विषमताओं और पाखण्डों का कठोरता के साथ खण्डन किया।17

^ge ?kj tkjk vkiuk] fy;k eqjkM+k gkFkA vc ?kj tkjkS rkl dk] tks pys gekjs lkFkAA

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने ठीक ही लिखा है कि – ''कबीर दास सिर से पैर तक मस्त–मौला थे।''18 हिन्दी साहित्य के हजार वर्षों के इतिहास में कबीर जैसा व्यक्तित्व लेकर कोई भी लेखक उत्पन्न नहीं हुआ। मस्ती, फक्कड़ाना स्वभाव और सब कुछ झाड़–फटकार कर चलने वाले कबीर को हिन्दी में अद्वितीय व्यक्तित्व माना जाता है। कबीर वाणी में गोते लगाकर भारतीय जन मानस आत्मिक शान्ति महसूस करता है।

इस प्रकार यही कहा जा सकता है कि कबीरदास अत्यन्त तेजस्वी और क्रान्तिदर्शी कवि हैं। उन्होंने न केवल उच्चकोटि के काव्य की रचना की, बल्कि जन–जीवन का नायकत्व किया। वे भारत की उस समन्वयात्मक प्रवृत्ति के जीवंत प्रतीक थे, जिसका प्रतिपादन उन्होंने अपने काव्य में किया है। उनके काव्य में विचार एवं ज्ञान का अद्भुत समन्वय है। तत्कालीन पथभ्रष्ट समाज को धर्म की संकीर्णताओं से सद्मार्ग दिखाना उनका प्रमुख उद्देश्य है। वस्तुतः कबीरदास का जीवन विरोध पूर्ण रहा। इसलिए उनके व्यक्तित्व में दो प्रवृत्तियाँ देखने को मिलती हैं प्रथम रचनात्मक, द्वितीय खण्डनात्मक। बाहर के द्वैत को बेधकर भीतर के अद्वैत को दिखाना कबीर के समस्त खण्डनों की आत्मा है। कबीरदास अपने युग के तो महान कवि थे ही साथ ही आगामी युग के भी प्रेरणास्रोत बन गये हैं।

lUnHkZ & xzUFk lwph

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास – डॉ0 नगेन्द्र पृष्ठ – 269 2. कबीर बानी, डॉ0 भागीरथ मित्र, पृष्ठ – 7 3. कबीरदास, डॉ. क्रांन्ति कुमार जैन, मुख पृष्ठ 4. कबीर बानी, डॉ0 भागीरथ मिश्र, पृष्ठ – 8 5. कबीर बानी, डॉ0 भागीरथ मिश्र, पृष्ठ – 10 6. कबीर बानी, डॉ0 भागीरथ मिश्र, पृष्ठ – 14 7. मध्यकालीन काव्य, सं. डॉ. हरि मोहन बुधौलिया, पृष्ठ – 6 8. कबीर – हजारी प्रसाद द्विवेदी पृष्ठ – 40 9. कबीर बानी, डॉ0 भागीरथ मिश्र, पृष्ठ – 21 10. कबीर – हजारी प्रसाद द्विवेदी पृष्ठ – 174 11. कबीर – हजारी प्रसाद द्विवेदी पृष्ठ – 178 12. कबीर – हजारी प्रसाद द्विवेदी पृष्ठ – 171 13. मध्यकालीन काव्य, सं. डॉ. हरि मोहन बुधौलिया, पृष्ठ – 3 14. कबीर – हजारी प्रसाद द्विवेदी पृष्ठ – 170 15. मध्यकालीन काव्य, सं. डॉ. हरि मोहन बुधौलिया, पृष्ठ – 5 16. मध्यकालीन काव्य, सं. डॉ. हरि मोहन बुधौलिया, पृष्ठ – 7 17. हिन्दी साहित्य की भूमिका, हजारी प्रसाद द्विवेदी पृष्ठ – 92 18. कबीर – हजारी प्रसाद द्विवेदी पृष्ठ – 170